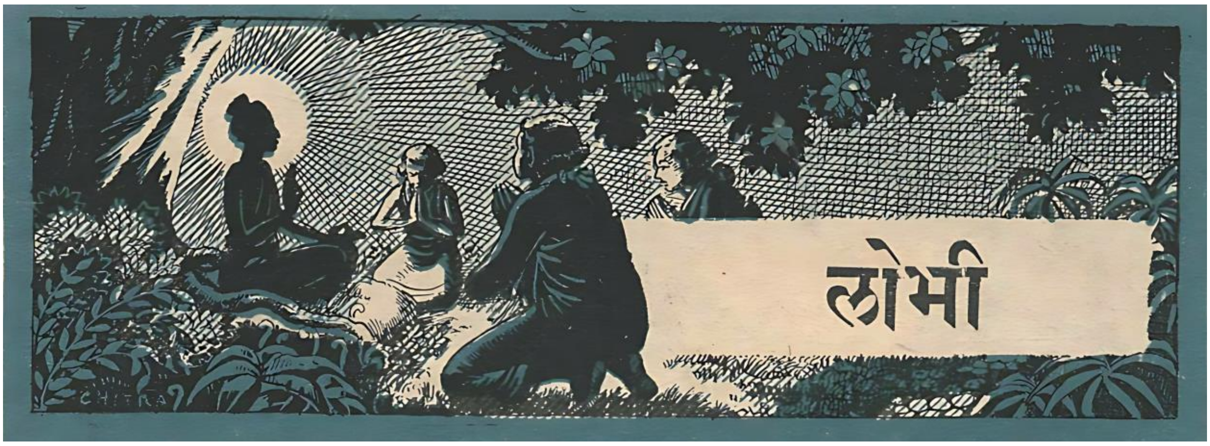
चन्दामामा

- बच्चों का मासिक पत्र





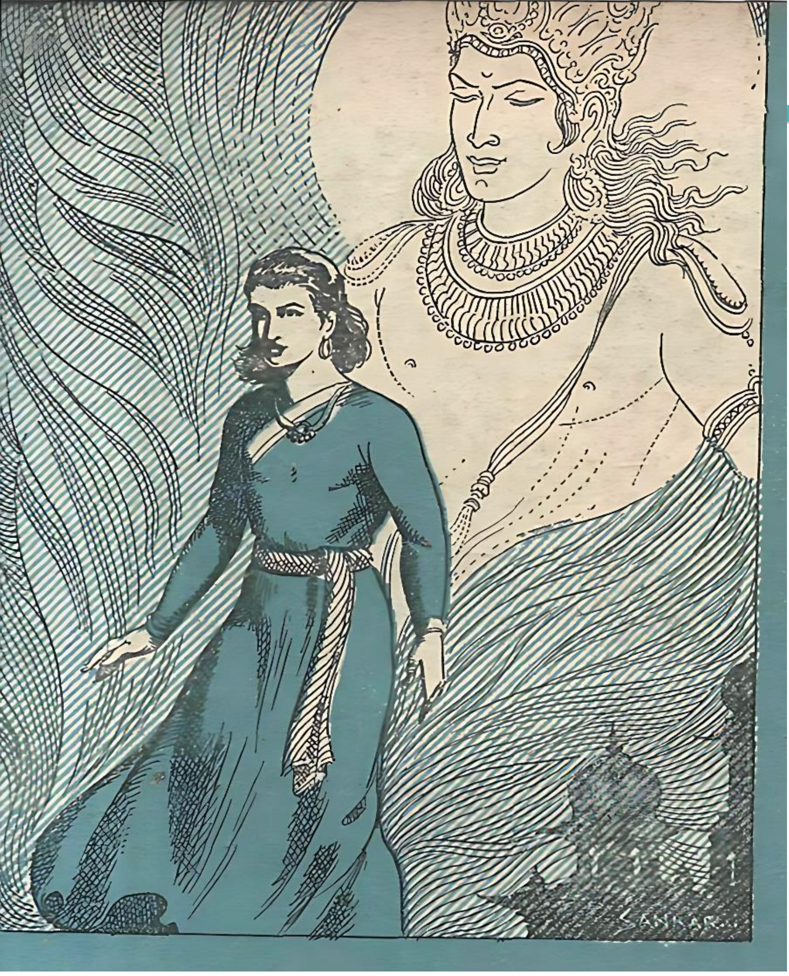
काशी के राजा ब्रह्मदत्त के दो लड़के थे। जब वह बूढ़ा हो गया, तब उसने बड़े लड़के को राजा बना दिया और छोटे को सेनापति नियुक्त किया। पिता की मृत्यु के बाद, बड़े लड़के के पट्टाभिषेक के लिए तैयारियाँ होने लगीं। परन्तु जब गद्दी पर बैठने का समय आया, तो उसने कहा-"मुझे यह राज्य नहीं चाहिये। भाई को ही गद्दी पर बैठाओ।" उसने स्वयं वैराग्य स्वीकार कर लिया।

वह काशी राज्य को छोड़कर किसी दूरवर्ती सामन्त के इलाके में चला गया। वहाँ एक धनी के घर नौकर हो गया। कुछ दिनों बाद, काशी राज्य से, कई कर्मचारी कर निश्चित करने के लिये उस इलाके में आये। धनी के घर राजकुमार को उन्होंने पहचान लिया, और उनको सम्मान की दृष्टि से देखा। यह जानते ही धनी ने उससे आकर कहा-"अपने भाई काशी राजा को लिखो कि मेरा कर कम कर दिया जाय।" राजकुमार ने भाई को इस बारे में लिखा, और भाई मान भी गया।

यह मालूम होते ही गाँव के और लोग भी राजकुमार को सताने लगे कि भाई को लिखकर, उनका कर भी कम करवा दिया जाय। उसने उन सब की तरफ़ से

राजा को लिखा। राजा ने उनके कर भी कम कर दिये।

तब से, जो कर राजा को दिया जाना चाहिये था, उसे इकठ्ठा कर, वे राजकुमार को देने लगे। लोगों के बहुत कहने-सुनने पर उसने कर लेना स्वीकार कर लिया। राजकुमार का वैराग्य शनैः शनै जाता रहा। फिर राज्य पाने की इच्छा उसको हुई।



इसलिए धीमे धीमे सामन्त राज्यों को इस तरह वह अपने प्रभाव में लाता गया। कर के बारे में भाई को लिखता गया। काशी राजा बड़े भाई की बात को न नहीं कर पाता था। अन्त में, काशी राज्य को ही हड़पने की बड़ा भाई सोचने लगा। उसने पाँच-दस आदमियों को जमा किया और छोटे भाई के पास ख़बर भिजवायी-"राज्य सौंप दो, वरना युद्ध के लिये तैयार हो जाओ।" छोटे भाई ने उत्तर भिजवाया-"मैं तुम से युद्ध करना नहीं चाहता। तुम्हारा ही राज्य है। तुम्हारा ही इसका पालन करना उचित है।" बड़ा भाई राजा हो गया और छोटा भाई सेनापति ।

बड़ा भाई एक राज्य से सन्तुष्ट न हुआ। उसकी राज्य-तृष्णा बढ़ती गयी और एक एक करके, उसने कई राज्यों को अपने राज्य में मिला लिया। पर उसकी तृष्णा कम नहीं हुई।

इसी समय :

जब देवेन्द्र भूलोक की घटनाओं के बारे में चर्चा कर रहा था तो काशी राज्य की बात भी उठी। उसने बड़े भाई को सबक सिखाने का निश्चय किया।

एक नौजवान का वेष धर देवेन्द्र राजा के दर्शन के लिये गया। उसने कहा कि वह वहाँ एक रहस्य बताने आया है। राजा उसको अपने अन्तःपुर में ले गया।

"एक जगह तीन महा नगर हैं। उन महा नगरों में हर तरह की श्री-सम्पदा है। मैं उन्हें जीतकर तुम्हें दूँगा।" देवेन्द्र ने राजा को उकसाया।

राजा ललचाने लगा और इस बीच में देवेन्द्र अदृश्य हो गया।

राजा ने उस नवयुवक की खोज करवायी। जब वह न दिखाई दिया, तो

उसे चिन्ता सताने लगी। उसने मुख्य कर्मचारियों को बुलाकर कहा- "अभी जो नौजवान आया था, उसने तीन महा नगरों को जीतकर मुझे देने का वादा किया था। देखो, वह कहाँ है? खोजो।"

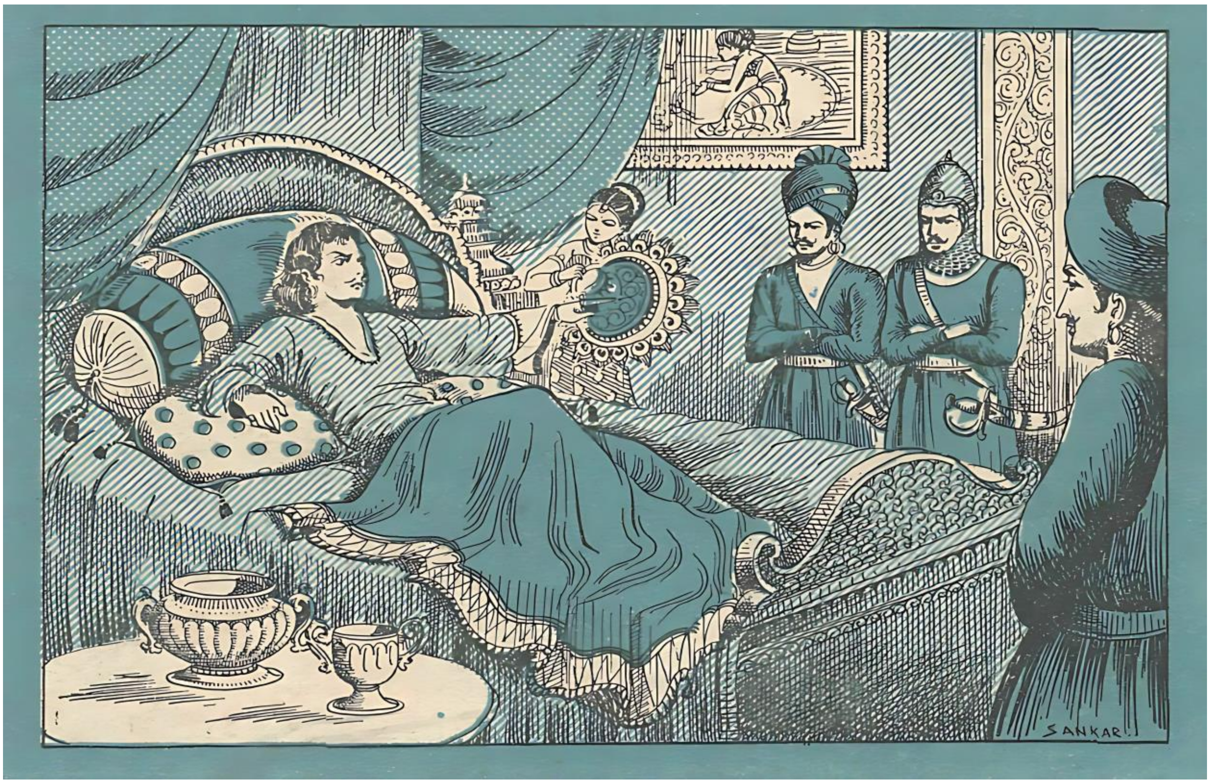
नौकरों ने सारा शहर खोजा, पर उस नौजवान का कहीं पता नहीं लगा। धीमे धीमे उसकी चिन्ता, मनोव्याधि के रूप में प्रबल हो उठी। राजा ने पलङ्ग पकड़ा। और रोग का इलाज न हो सका।

इसी समय बोधिसत्व, समस्त शास्त्रों में पारङ्गत होकर, तक्षशिला से घर लौटा था। उसने राजा को ख़बर पहुँचवायी कि वह उसके रोग की चिकित्सा कर सकेगा।

"आपको क्या तकलीफ़ है?" बोधिसत्व ने पूछा।

उस दिन से, जब कि एक नौजवान तीन महा नगर जीतकर सौंप देने का वादा कर गया था, जो जो राजा ने अनुभव किया था, सब कह सुनाया। "मुझे तब से यह रोग सता रहा है। देखो, इसकी चिकित्सा कर सकते हो कि नहीं?"

"राजन्! मैं एक बात पूछता हूँ, उसका उत्तर दीजिये। इस तरह चिन्ता



करते रहे तो क्या आप वे महा नगर अपने वश में कर सकेंगे?" और राजा ने इसका उत्तर दिया कि "नहीं।"

"इसलिए चिन्ता करने से कोई लाभ नहीं। इस संसार में प्रति वस्तु, कुछ दिनों बाद नष्ट हो जाती है न?" बोधिसत्व ने पूछा। राजा ने कहा "हाँ।"

"प्रति प्राणी को, प्यार से पाले हुए शरीर को पीछे छोड़कर जाना ही पड़ता है न? " फिर बोधिसत्व ने पूछा। राजा ने यह भी स्वीकर किया। वह बोधिसत्व की बातों को और ध्यान से सुनने लगा।

"इसलिए राजन्! तीन महा नगर तो क्या, तीस नगरों को भी अपने वश में कर आप अधिक सुख नहीं प्राप्त करेंगे। इस संसार में कोई भी चीज़ शाश्वत नहीं है। लालच एक भूत की तरह है। उसका कोई अन्त नहीं है। और जब कोई लालच का शिकार हो जाता है, तो उसको भी वही रोग होता है, जो आपको हुआ है। अगर आप इस कष्ट से मुक्त होना चाहते हैं, तो इस लालच को मन में लगाम लगाकर रखिये। बाहर न जाने दीजिये। जिस प्रकार चमार चप्पल के लिए जितना चमड़ा चाहिये उतना ही चमड़ा काटता है, उसी तरह जीवन में उतनी ही इच्छाओं को कार्यान्वित करनी चाहिये, जितनी की आवश्यक हैं। अगर इच्छाओं को उनकी सीमा से पार होने दिया, तो वे ही इच्छाएँ दावाग्नि की तरह भयङ्कर हानि पहुँचाती हैं।" बोधिसत्व के इस प्रवचन को सुन, राजा का मन शान्त तो हुआ और उसका रोग भी कम हुआ।

राजा की इच्छा पर बोधिसत्व ने कई उपदेश दिये। राजा को सलाह देते हुए अपना सारा जीवन उसी राज्य में बिता दिया।





[२]

[सर्व-सम्पन्न, शान्ति-प्रिय मराल द्वीप का मन्दरदेव राजा था। पासवाले राज्य का नाम था, कुण्डलिनी द्वीप। कुण्डलिनी द्वीप में नरवाहन मिश्र ने अराजकता पैदा कर राज्य की बागडोर अपने हाथ में ले ली थी, और वह मराल द्वीप पर आक्रमण करने के लिये निकल पड़ा। उसी समय, उसके भेदिये मन्दरदेव को पकड़कर समुद्र की तरफ़ ले जा रहे थे। आगे – "]

घन घने बादल घिर आये। बिजली चमकने लगी। मूसलाधार वर्षा शुरू हो गई। नारियल के पेड़ों को झकझोरता हुआ तूफ़ान चल पड़ा। समुद्र में युद्ध करते हुए मराल और कुण्डलिनी द्वीप के नाविक तितर-बितर होने लगे। तब तक कुण्डलिनी द्वीप के कुछ सैनिक किनारे पर पहुँच गये थे, और मराल द्वीप के सैनिकों के साथ घमासान युद्ध कर रहे थे।

मन्दरदेव को भी, जो तेज़ घोड़े पर चला जा रहा था, कुण्डलिनी और मराल द्वीपों के सैनिकों का जय जयकार निरन्तर सुनाई पड़ रहा था। जय कुण्डलिनी चिल्ला-चिल्लाकर कुण्डलिनी के सैनिक आगे बढ़ रहे थे, और "जय मराल" के निनाद के साथ मराल द्वीप के सैनिक उनका मुक़ाबला कर रहे थे। आकाश में बादल गरज रहे थे; हवा इतनी ज़ोर से चल रही



थी मानों आकाश और भूमि के टुकड़े टुकड़े हो रहे हों। प्रकृति अत्यन्त भयावना और क्रुद्ध मालूम होती थी।

"अब शायद मैं इस देश का राजा न रहूँ।" मन्दरदेव ने मन ही मन सोचा। वह कहीं नज़र बचाकर भाग नहीं सकता था। वह अपने बाग़ी अङ्ग-रक्षकों से मुक़ाबला भी नहीं कर सकता था, क्योंकि वह बेहथियार था। वह अभी सोच ही रहा था कि उसको पीछे से "जय मराल" की तुमुल ध्वनि सुनाई पड़ी। वह चकित होकर चौंका। उसने पीछे मुड़कर देखा।

इस तरह ध्वनि करनेवाले, उसकी रक्षा के लिये मन्त्री द्वारा भेजे हुए सैनिक ही थे। वे बड़े वेग से घोड़ों पर उनका पीछा कर रहे थे।

उनके घोड़े समीप आते जाते थे। ध्वनि सुनते ही मन्दरदेव का हौसला बढ़ा। उसी क्षण आकाश में, चकाचौंध करनेवाली बिजली चमकी, बादल गरजे। जब उसने आँखें खोलीं तो दो बाग़ी अङ्ग-रक्षक ज़मीन पर छटपटा रहे थे। उनका एक घोड़ा भी तड़प तड़पकर मर रहा था और दूसरा अन्धाधुन्ध इधर इधर दौड़ रहा था।

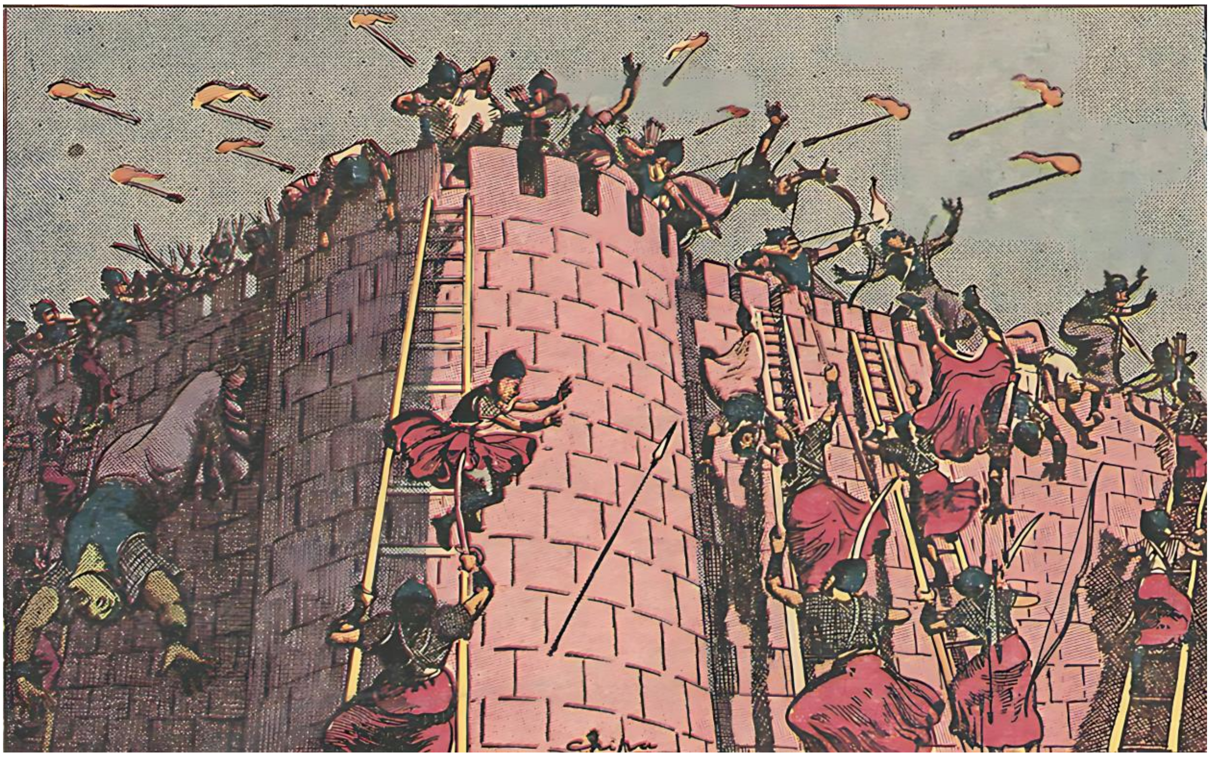
मन्दरदेव झट घोड़े पर से उतरा। इतने में उसकी रक्षा के लिये भेजे हुए सैनिक उसके पास पहुँच गये। सब उन छट-पटाते हुए अङ्ग-रक्षकों की तरफ देखने लगे। मरते हुए अङ्ग-रक्षक ने हाथ से सङ्केत कर राजा को पास बुलाया। मन्दरदेव उसके पास जाकर बैठ गया। तब उस अङ्ग-रक्षक ने हाँफते हाँफते कहना शुरु किया :-

"महाराज! हम दोनों ने आपको हानि पहुँचानी चाही। पर यह काम हम धन के लालच से नहीं कर रहे थे। इस नीच नरवाहन मिश्र ने हमें ख़बर भिजवायी थी

कि अगर हमने उसकी मदद न की तो वह हमारा और हमारे परिवार का सर्वनाश कर देगा। आप जानते ही हैं कि हम कुण्डलिनी द्वीप के रहनेवाले हैं। हमें अपनी करनी का फल मिल रहा है। हमने आप की जो हानि पहुँचायी है, उसके बदले में हम आपका एक उपकार करना चाहते हैं। अगर कभी आप पर इस द्वीप को छोड़ने की नौबत आ पड़े तो ठीक सामने वाले घने नारियल के बाग़ के परली तरफ़ दो नाव हैं--" कहता कहता वह अङ्ग-रक्षक वहीं ढ़ेर हो गया।

मन्दरदेव ने उठकर अपने क़िले की ओर देखा। क़िले की बुर्जों पर से सैनिक लगातार बाण छोड़ते चले जा रहे थे। कई बड़े बड़े पत्थर नीचे लुढ़का रहे जय जय करते, कुण्डलिनी द्वीप के सैनिक सीढ़ियाँ लगाकर क़िले पर चढ़ने की कोशिश कर रहे थे।

मन्दरदेव जान गया कि उसके सैनिक विषम परिस्थितियों में लड़ रहे थे। इतने में कुण्डलिनी द्वीप के सैनिकों ने, उस भयङ्कर तूफ़ान में मराल सैनिकों को परास्त कर क़िले को चारों तरफ़ से घेर लिया था।





राजा अब शत्रु सेनाओं के पीछे था। चार सिपाहियों के साथ उनका सैनिकों के साथ लड़ना केवल मौत के में हाथ डालना था।

मन्दरदेव अभी इसी उधेडबुन में था कि इतना भयङ्कर शब्द हुआ, जैसे कोई ज्वालामुखी फूट पड़ा हो। भूमि काँपने लगी। हक्काबक्का हो वह क़िले की तरफ़ देखने लगा। क़िले का एक बुर्ज़, टुकड़े टुकड़े हो गया था और टुकड़े इधर-उधर ज़मीन पर पड़े हुए थे। सैनिकों के हाहाकार और जयकार से आकाश गूँज रहा था।

"सर्वनाश हो गया है। बारूद लगा कर कुण्डलिनी के सैनिकों ने हमारे क़िले को उड़ा दिया है। अब हमारे हारते देर न लगेगी।" मन्दरदेव ने कहा। आसपास के सैनिकों ने सिर हिलाकर अपनी सम्मति प्रकट की।

मन्दरदेव ने निश्चय किया कि उसे अब मराल देश छोड़ना ही पड़ेगा। शत्रु के क़िले के अन्दर एक बार चले जाने के बाद, क़िले को वश में कर लेना उनके लिये ऐसी बड़ी बात नहीं है। क़िले को कब्जे में कर वे उसकी तलाश में निकलेंगे।

अगर वह क़ैदी बना लिया गया तो उसकी बोटी-चोटी भले ही न कटवायी जाय, परन्तु वह क्रूर नरवाहन मिश्र उसका अपमान ज़रूर करेगा।

"चलो चलें! हो सकता है, नावों के बारे में उस विश्वासघाती की बात सच ही हो। मराल देवी की कृरा रही तो हम सुरक्षित किसी और द्वीप में पहुँच जायेंगे। देवी की कृपा से फिर इस मराल देश पर अधिकार भी कर सकते हैं।" मन्दरदेव ने उन्हें उत्साह देते हुए कहा।

सैनिकों ने हताश होकर क़िले की तरफ़ देखा। क़िले के बुर्ज़ पर, जो मराल सैनिक लड़ रहे थे, वे अब न दिखाई देते थे। कुण्डलिनी के सैनिक निर्भय हो, सीढ़ियों पर से क़िले की दीवारों पर चढ़ अन्दर जा रहे थे।

मन्दरदेव आगे बढ़ा। अपने राजा को निश्शस्त्र देखकर, एक सैनिक ने, मृत अङ्ग-रक्षक की तलवार निकालकर उनको दे दी। सब के सब समुद्र के किनारे वाले घने नारियल के बाग़ की ओर जल्दी जल्दी चल पड़े। मूसलाधार वर्षा ज़ारी थी। बादल गरज रहे थे। तूफान चल रहा था। मुश्किल से रास्ता दिखाई देता था। निराश, निरुत्साह, खिन्न, विह्वल, राजा सिर नीचे किये चलता जाता था। उसके पीछे उसके सैनिक भी पैर घसीटते घसीटते आ रहे थे। यकायक उनको पीछे से शोर-शराबा सुनाई दिया। तुरन्त उन्होंने पीछे मुड़कर देखा। क़िले की तरफ़ से उनकी तरफ आते हुए कई घुड़ सवार दिखाई दिये। झट मन्दरदेव ने ज़ोर से कहा- "वे कुण्डलिनी द्वीप के सैनिक हैं। हमें पकड़ने के लिये आ रहे हैं। इस



खुले मैदान में, हमारा इन घुड़सवारों से मुक़ाबला करना ख़तरे से खाली नहीं है। पहले हमें इस नारियल के बाग़ में पहुँच जाना अच्छा है।" कहता कहता राजा उस तरफ भागने लगा। सैनिक भी राजा के पीछे पीछे भागे।

सब के सब नारियल के बाग़ में जाकर, किले की ओर मुँह करके, पेड़ों के पीछे छुप गये। कुण्डलिनी द्वीप के कुछ घुड़-सबार विद्युत गति से उस तरफ़ आ रहे थे। मन्दरदेव, तलवार निकालकर, समुद्र की ओर देखने लगा। विश्वासघाती अङ्ग-रक्षक



के कहने के अनुसार, वहाँ वास्तव में दो नावें, किनारे पर थीं। मन्दरदेव ने सोचा, क्यों न एक छलाँग में नौका में जाकर बैठा जाय, और समुद्र में भागा जाय। पर ज्योंही उसने दूसरी तरफ़ देखा तो कुण्डलिनी के पन्द्रह हट्टे-कट्टे जवान घुड़-सवार बाग़ के पास पहुँच चुके थे। उनके हाथों में बड़ी बड़ी तलवारें चमक रही थीं।

"या तो इन्हें जीतूंगा, नहीं तो स्वर्ग जाऊँगा।" कहते हुए राजा मन्दरदेव ने, तलवार निकालकर घुड़ सवारों को ललकारा। घुड़-सवार भी तलवार लेकर आगे बढ़े। उनको न मालूम था कि उनके शत्रु पेड़ों के पीछे छुपे हुये थे। वे घोड़े लेकर बाग़ के बीचों-बीच आ गये। "जय मराली" चिल्लाता हुआ, मन्दरदेव बब्बर शेर की तरह आगे की ओर कूदा। और झट एक घुड़ सवार का सिर धड़ से अलग कर दिया। घोड़ा हिनहिनाने लगा।

मन्दरदेव के सिंह-गर्जन ने कुण्डलिनी देश के घुड़सवारों के मन में कँपकँपी पैदा कर दी। उस



घने नारियल के बाग़ में वे अपने घोड़ों को इधर-उधर फेर भी न सकते थे। जगह की तङ्गी थी। वे घबराने लगे। यही मौका देख, मन्दरदेव के सैनिकों ने, अपनी तलवारों से एक एक करके उनको घायल करना शुरू किया।

दो-तीन घुड़ सवार घायल हो नीचे गिर गये। ऐसे काम न चलेगा, यह सोचकर, बाकी घुड़ सवार घोड़ों पर से उतरकर, मन्दरदेव और उसके सैनिकों का मुक़ाबला करने लगे। पेड़ों की ओट में घमासान युद्ध शुरु हो गया। निशाना ठीक रहा तो तलवार की चोट शत्रु पर

लगती, नहीं तो पेड़ पर। सैनिक अन्धाधुन्ध चोट करते जाते थे।

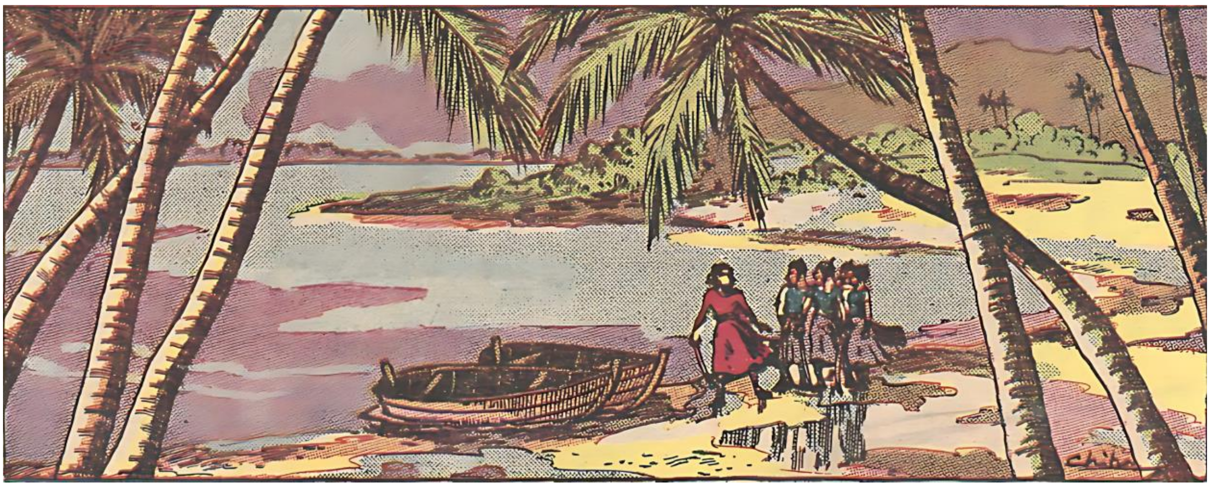
युद्ध के शुरु होने के दो-तीन मिनट बाद ही, कुण्डलिनी द्वीप के कई सैनिक मारे गये। पेड़ों के पीछे छुपे-छुपे, मन्दरदेव और सैनिक वार करते और फिर ओट में आ जाते। देखते देखते उन्होंने कइयों को ढ़ेर कर दिया। जब पन्द्रह घुड़सवारों में से कुछ लोग मारे गये और घायल किये गये, तो बाकी भी डर के मारे मैदान छोड़कर भागने लगे। भागते हुए सैनिकों के पीछे राजा मन्दरदेव "जय मराली" का निनाद करता और उन्हें भगाता।

थोड़ी देर में युद्ध ख़तम हो गया। आकाश में बादलों के गर्जन के सिवाय किसी तरफ़ से भी कोई आवाज़ न आ रही थी। बचे-खुचे घुड़सवार, अपने घोड़ों को बाग़ में ही छोड़कर क़िले की तरफ़ भाग गये।

न तो मन्दरदेव को ही कोई बड़ा जख़्म लगा, न उसके सैनिकों को ही। पर वे बुरी तरह थक गये थे। मन्दरदेव, तलवार म्यान में रखकर, किनारे पर लगी नाव की ओर चल पड़ा। चारों सैनिक उसके पीछे पीछे चल रहे थे।

विश्वासघाती अङ्ग-रक्षक की बतायी हुई दो नावें, होने को तो वहाँ थीं, पर उन पर, समुद्र में दूर तक नहीं जाया जा सकता था। पाल और चप्पू से उन्हें चलाया जा सकता था।

मन्दरदेव नाव के पास जाकर यकायक रुक गया; जैसे कोई बात सूझ गयी हो। सैनिकों की तरफ़ देखकर उसने अपना सिर हिलाया।
(अभी और है)





समस्या - पूर्ति

काशी में विलोचन नाम का एक कवि रहा करता था।

उसकी पत्नी, पुत्र, और पुत्र-वधू भी कवि थे। राजा भोज का दर्शन करने के लिए, कई देशों की यात्रा करते हुए, वे धारानगर पहुँचे। राजा भोज कविता पर जान देता था। उनके दरबार में कई पण्डित व कवि थे। वे स्वयं भी एक बड़े पण्डित थे और कविता किया करते थे।

राजा भोज ने चारों को बुलाकर उचित आसन दिया और उनको यह समस्या पूर्ति करने के लिए दी :

"क्रिया सिद्धि स्सत्त्वे भवति महतां, नोपकरणे"

"प्रतिभाशाली अपना काम स्वशक्ति से करके दिखाते हैं, साधनों के बल पर नहीं।" यह इस पंक्ति का भावार्थ है। राजा भोज ने एक ही पंक्ति रची थी, बाकी पंक्तियों का बनाना कवियों का काम था। समस्या-पूर्ति इस तरह की जानी चाहिये, ताकि अन्य पंक्तियों का पहिली पंक्ति से सम्बन्ध हो और समूचे श्लोक का एक सम्बन्धित अर्थ निकलता हो। पाण्डित्य की परीक्षा करने के लिये उन दिनों यह प्रथा अधिक प्रचलित थी और अब भी है।

भोज की दी हुई समस्या को कवि विलोचन ने इस प्रकार पूरी की:

घटो जन्मस्थानं, मृग परिजनो भूर्ज वसनो,

वने वास: कंदादिक मशन देवविध गुणः

अगस्त्यः पाथोधिं यदकृत करांभोज कुहरे

क्रिया सिद्धि स्सत्त्वे भवति महतां, नोपकरणे

इस श्लोक का तात्पर्य इस प्रकार है।

अगस्त्य घड़े में पैदा हुआ, जङ्गल में पशुओं के साथ वल्कल वस्त्र पहनकर, कन्द-मूल खाकर बड़ा हुआ। परन्तु उसने सारा समुद्र का जल पी लिया। प्रतिभा-

श्री विमलेश्वर प्रसाद मिश्र



रवियत्ये वांतं प्रतिदिन मपारस्य नभसः

क्रिया सिद्धि स्सत्त्वे भवति महतां, नोपकरणे

इसका मतलब यों है: सूर्य का एक ही चक्रवाला रथ है। साँप के समान सात घोड़े हैं। रास्ता आधार-हीन आकाश है। तो भी सूर्य अनन्त आकाश में आता जाता रहता है। इसलिए कहना होगा कि प्रतिभाशाली आवश्यक उपकरणों के बिना भी अपना कार्य कर लेते हैं।

दरबार में तालियाँ बजीं। पण्डित 'वाह वाह' करने लगे। राजा भोज ने उसको बारह हीरे इनाम देकर सम्मानित किया। वे बहुत हर्षित हुए। विलोचन कवि के पुत्र से राजा ने सप्रेम कहा-"देखें बेटा, तुम कैसे इस समस्या की पूर्ति करते हो?"

कवि विलोचन और उसकी पत्नी अपने लड़के की ओर इस तरह देखने लगे, जैसे

उसे उत्साह दिला रहे हों। लड़के ने समस्या की पूर्ति करते हुए यह श्लोक सुनाया :

विजेतव्या लंका, चरण तरणीयो जलनिधिः

विपक्षः पौलस्त्यो, रणभुवि सहायाश्च कपयः

पदातिर्मर्त्यो सौ सकलमवधी द्राक्षसकुलं

क्रिया सिद्धि स्सत्त्वे भवति महतां, नोपकरणे.

शालियों के लिये कार्य-सिद्धि ही प्रधान है, उपकरण नहीं।

यह श्लोक सुन, राजा भोज सन्तुष्ट हुआ और कवि विलोचन को उसने एक बहुमूल्य हीरा इनाम में दिया। तब उसने विलोचन की पत्नी से मुस्कुराते हुए कहा-"अब आप इसे पूरा कीजिये।"

विलोचन की पत्नी ने थोड़ी देर राजा की ओर देखा, फिर दरबार में बैठे कवियों को निहारा। सोच-विचार कर उसने तुरन्त निम्न श्लोक बना कह सुनाया:

रथ स्यैकं चक्रे, भुजगनमिता स्सप्त तुरगा,

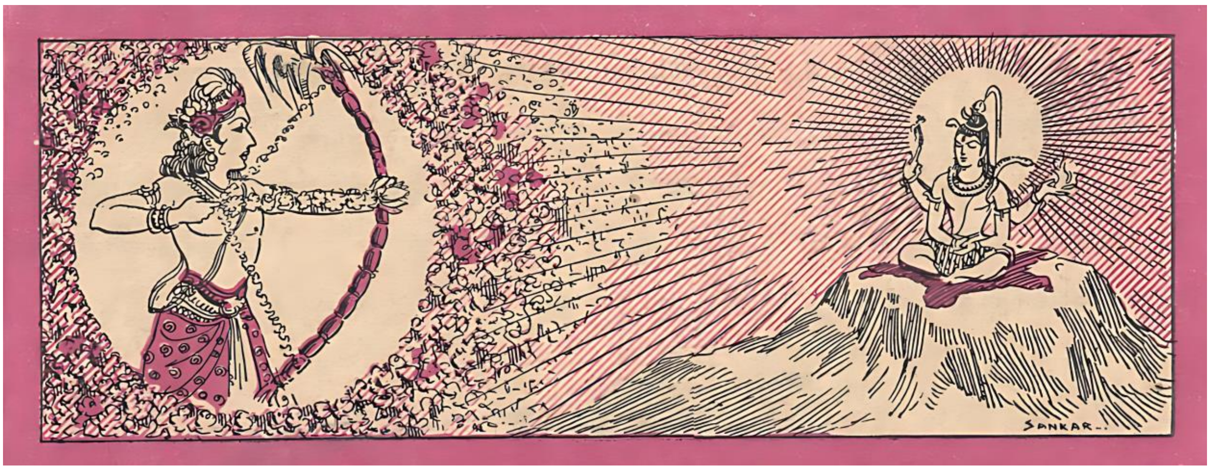
निरालम्बो मार्गः, चरण विकल स्सारथिरपि

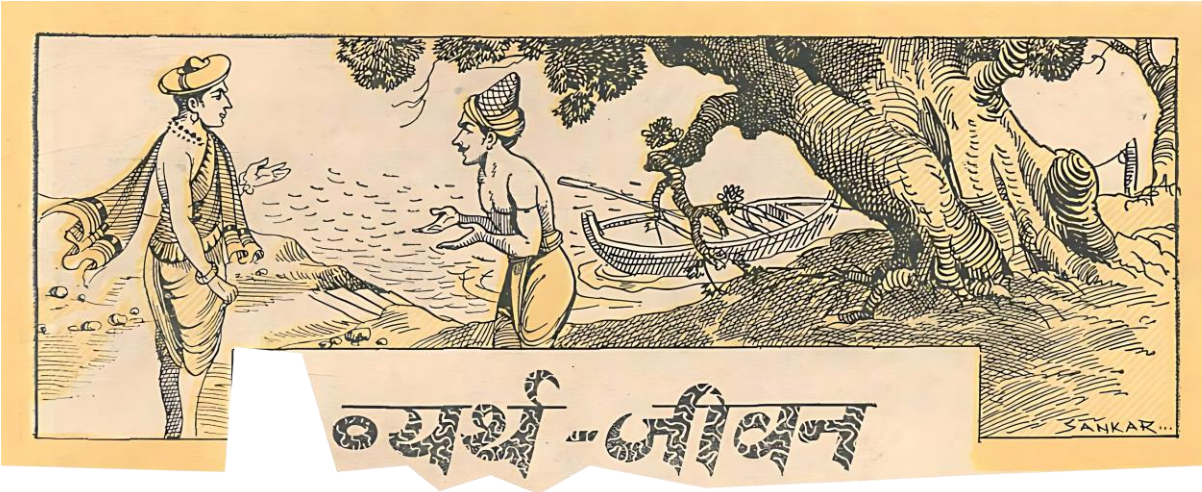
इसका अर्थ इस प्रकार है: लङ्का को जीतना है, समुद्र को पैदल पार करना है, और शत्रु ब्रह्म वंशज रावण है। सहायता करने के लिए बन्दरों के सिवाय कोई नहीं है। स्वयं केवल मनुष्य मात्र ही है, तो भी राम ने राक्षस-वंश का युद्ध में निर्मूल कर दिया। अतः प्रतिभाशाली स्वशक्ति से कार्य सम्पन्न करते हैं, किसी साधनों के बल पर नहीं। वे अपने बल पर ही निर्भर रहते हैं। राजा भोज ने इस श्लोक के लिए कवि के लड़के को सोलह हाथी इनाम में दिये। दरबारी राजा की उदारता और लड़के के पाण्डित्य की पूरी पूरी प्रशंसा करने लगे। तब उसने विलोचन कवि की पुत्र-वधू से पूछा- "क्या तुम भी इस समस्या को पूरी करोगी?" वह थोड़ी देर नीचे, निगाह किये खड़ी रही, जैसे झिझक रही हों। फिर उसने तुरन्त समस्या इस प्रकार पूरी कर दी :

धनुः पौष्पं, मौर्वी मधुकरमयी चंचल दृशां
दृशां कोणो बाणः, सुहृदपि जड़ात्मा हिमकरः
स्वयं चैको नंगः सकल भुवनम् व्याकुलयति
क्रिया सिद्धि सत्त्वे मवति महतां, नोपकरणे

इसका भावार्थ यह है: जिसका फूलों का धनुष है, जिसकी प्रत्यञ्चा पर भौरें हैं। स्त्री की आँखें रूपी बाणों से, जड़ चन्द्रमा के आधार पर, शरीर हीन ऐसे मन्मथ ने संसार को व्याकुल कर रखा है। प्रतिभाशालियों के लिए उपकरण गौण हैं। वे हमेशा अपनी शक्ति पर ही इस संसार में निर्भर रहते हैं।

यह श्लोक सुन राजा भोज बहुत ही प्रसन्न हुआ। विलोचन कवि की पुत्र-वधू को उसने जेवर-जवाहरात भेंट में दिये। दरबारियो की भी यही सम्मति थी कि पुत्र-वधू का श्लोक सबसे अच्छा बन पाया था। उसका श्लोक ही सबसे अधिक रोचक था।





व्यर्थ-जीवन

एक गाँव में एक ब्राह्मण रहा करता था। वह समस्त शास्त्र, पुराण, इतिहासों में पारङ्गत था। वह स्वयं पण्डित तो था, पर दूसरों को, जो पढ़े-लिखे न थे, वह कुछ समझता ही न था। वे लोग जो समाज के लिए खून-पसीना एक करते थे, जैसे-किसान, बढ़ई, लोहार, जुलाहे, कुम्हार; उसकी नज़र में एकदम नाचीज़ थे।

एक दफ़ा ब्राह्मण को नदी पार कर जाना पड़ा। नदी के इस पार के लोगों को उस पार ले जाने के लिए एक कश्ती थी। उस कश्ती को चलानेवाला, न दिन को दिन समझता, न रात को रात ही। चौबीसों घण्टों अपने काम में लगा रहता।

नदी पार करने के लिए ब्राह्मण कश्ती पर चढ़ा। कश्तीवाला थोड़ी देर तक देखता रहा कि और कोई तो नहीं आ रहा। किसी को आता न देख, वह चप्पू उठाकर कश्ती को खेने लगा।

ब्राह्मण ने थोड़ी दूर तक किश्तीवाले को देखकर कहा-"कितनी बेकार है ज़िन्दगी तुम्हारी!" उसको मेहनत करता देख, ब्राह्मण को एक प्रकार की घृणा होने लगी।

"क्यों महाराज? आप ऐसा क्यों कह रहे हैं?" कश्तीवाले ने पूछा। "क्या तुम कोई शास्त्र जानते हो?" ब्राह्मण ने पूछा।

"मुझ जैसे अनाड़ी को भला शास्त्र क्या आयेंगे?" कश्तीवाले ने कहा।

"तब क्या? तुम्हारा आधा जीवन तो बेकार गया। खैर, कोई पुराण वगैरह कभी सुना है?" ब्राह्मण ने पूछा।

"रात-दिन तो कश्ती खेने में ही बीत जाते हैं। पुराण सुनने के लिए फुरसत ही कहाँ है?" किश्तीवाले ने कहा ।

श्री वैजनाथ सिंह

"देखा तुमने? तुम्हारा तीन चौथाई जीवन तो बेकार ही है। कम से कम कोई काव्य तो पढ़े होंगे?" ब्राह्मण ने पूछा।

"आप भी क्या कहते हैं? मैं तो पढ़ना तक नहीं जानता हूँ। मैं अंगूठी छाप गँवार हूँ। फिर काव्य क्या पढूँगा?" किश्तीवाले ने कहा।

"अब क्या रखा है? करीब करीब तुम्हारा सारा जीवन ही फालतू है। न जाने तुम कैसे जी रहे हो?" ब्राह्मण ने मज़ाक उड़ाते हुए कहा।

वे जब यों बातें कर रहे थे, तूफ़ान आने लगा। नदी उफनने लगी। बड़ी बड़ी भयङ्कर लहरें उठने लगीं। आकाश में घने काले बादल घिर आये, और रिमझिम रिमझिम होने लगी।

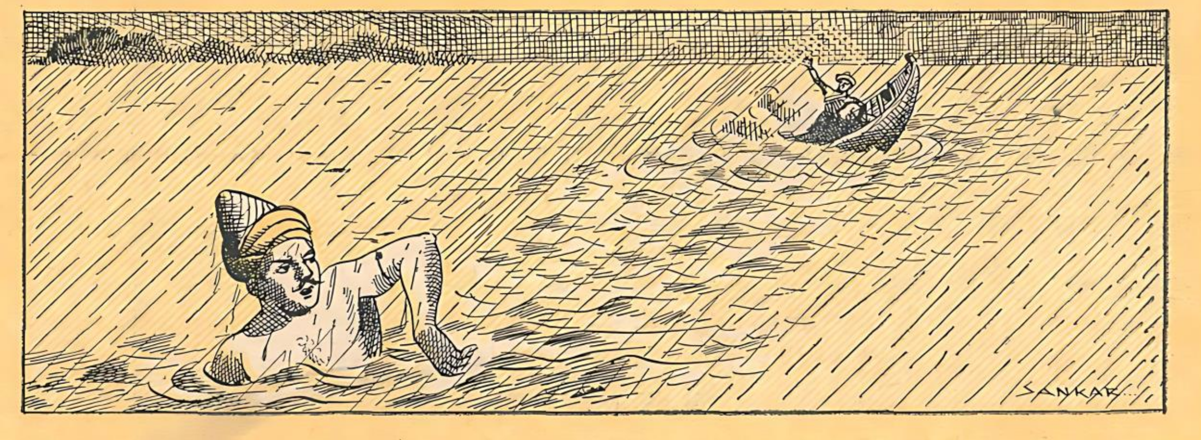
किश्ती मञ्झधार में थी। लहरें उसे इधर उधर थपेड़ रही थीं। तेज़ पानी उसे आगे की तरफ़ बहाये ले जा रहा था। चप्पू से कश्ती खेना कश्तीवाले के लिए असम्भव हो गया। कश्ती में भी पानी आने लगा, और धीमे धीमे किश्ती डूबने लगी।

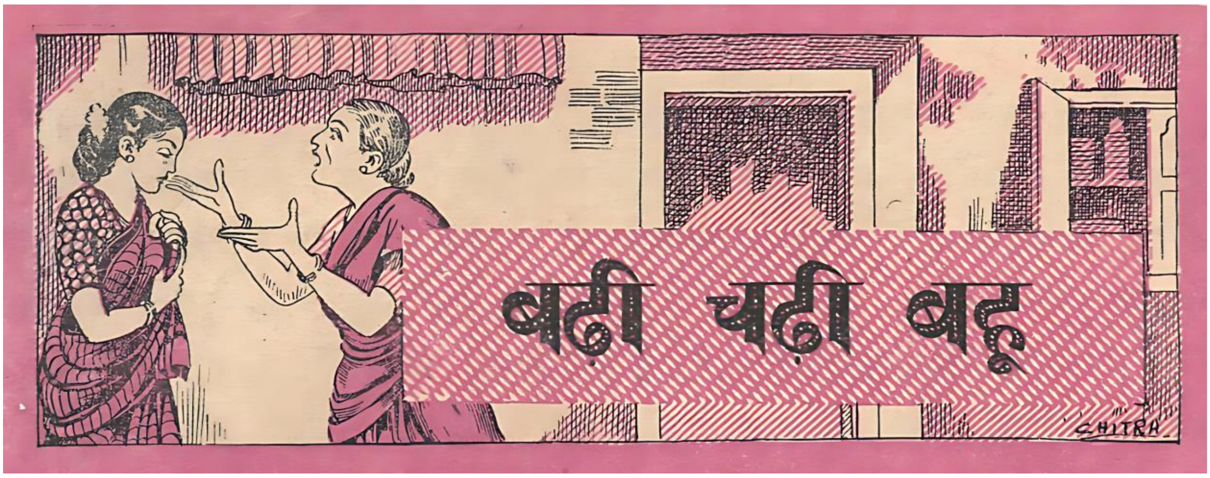
"अरे भाई! यह क्या? किश्ती डूबती-सी लग रही है।" ब्राह्मण ने डरते हुए पूछा।

"हाँ, महाराज! पर आप यह तो बताइए कि आपको तैरना आता है कि नहीं?" कश्तीवाले ने पूछा।

"मुझे तो नहीं आता।" ब्राह्मण ने कहा।

"तब तो महाराज! आपकी सारी ज़िन्दगी ही बेकार है।" कहता कहता कश्तीवाला पानी में कूद गया और तैरता तैरता, नदी पार चला गया।





पहले किसी ज़माने में, किसी शहर में एक नौजवान रहा करता था। उसकी शादी हो गयी थी, गौना भी हो गया था, पत्नी साथ ही रहती थी। उस नौजवान की माँ बड़ी चुड़ैल थी, बहू को हमेशा बुरी तरह सताती रहती। पेट भर खाना भी उसे न देती। उनके घर के पिछवाड़े में करेले का एक पौधा था। रोज़ करेले तोड़कर सास सिर्फ़ उतना ही शाक बनाती, जितना कि उसके और उसके लड़के के लिए ज़रूरी होता। बहू को एक टुकड़ा तक न देती। और बहू को करेला बहुत अच्छा लगता था। खाने को मिलता न था, इसलिए उसकी इच्छा दुगुनी हो गई थी। पर करती तो क्या करती? पति से कहने से कोई फ़ायदा न था। क्योंकि वह कतई बावला था; माँ से कुछ कह न पाता था।

एक बार सास अपने लड़की के घर, जो शहर में ही रहती थी, गई। यही मौका जान, बहू ने करेले तोड़कर शाक बनाया। चावल भी पका लिये।

उधर, सास को लड़की के घर किसी ने भोजन के लिये भी न पूछा और घर वापिस भेज दिया। सास मुँह मोड़कर घर चली आई और बहू को आवाज़ देती हुई किवाड़ खटखटाने लगी।

बहू पत्तल में शाक और चावल परोस कर खाने को ही थी कि सास की आवाज़ सुनाई पड़ी। बहू अपने भाग को रोने लगी। उसने पत्तल को कलसे में रखा, और दरवाज़ा खोल, पानी लाने का बहाना कर बाहर चली गई।

बाहर तो चली गई, पर दुर्भाग्य ने वहाँ भी उसका पीछा न छोड़ा। दोपहरी हो

श्री. शशिकला खन्ना

गई थी, पर तब भी कुएँ पर कई सारी औरतें थीं। उनके देखते देखते, कलसे में से चावल और करेले का शाक खाती, तो सारे गाँव भर ढिँढोरा पिट जाता, और उसकी सास को भी इस बारे में मालूम हो जाता।

इसलिए बहू, पासवाले किसी देवी के मन्दिर में गयी। अन्दर जाकर उसने दरवाज़ा बन्द कर लिया। कलसे में से चावल और शाक निकालकर, बड़े बड़े कौर बनाकर गबागब निगलने लगी।

यह देख देवी भी चकित हो गयी। उसने आश्चर्य में नाक पर अँगुली रखी और अँगुली वहीं की वहीं रह गई। कुँए पर जाकर, कलसा पानी से भर और वह घर चली गयी।

उस दिन शाम को, रोज़ की तरह पुजारी मन्दिर में आया। मूर्ति को उस हालत में देख, वह मूर्ति-सा रह गया। काटो तो खून नहीं। थोड़ी देर बाद उसे होश आया। राजा के पास भागा भागा गया और उसके सामने यों कहने लगा-"महाराज! वहुत भयङ्कर घटना घटी है। देश पर विपत्ति आनेवाली है।"

"क्यों, क्या बात है?" राजा ने पूछा।



"देवी ने नाक पर अँगुली रख ली है।" पुजारी ने कहा।

यह अचरज की बात देखने के लिये राजा सपरिवार गया। इस बीच में शहर के लोग भी मन्दिर के पास इकट्ठे हो गये। मूर्ति की नाक पर अँगुली देखकर सब ने, अपनी नाक पर अँगुली रख ली।

यह सचमुच देश के लिये हानिसूचक है। जो कोई मूर्ति की नाक से उसकी अँगुली हटा देगा, उसको एक हज़ार एक सौ एक रुपया इनाम दूँगा।" राजा ने कहा।



तुरन्त मूर्ति ने अँगुली नीचे कर दी। पुजारी की जान में जान आयी। राजा ने बहू को एक हज़ार एक सौ एक रुपया, हल्दी, सिन्दूर, साड़ी, जाकेट वगैरह भेंट में दीं। शहरवालों की भेंटों का तो कहना ही क्या!

तब से लोगों ने मूर्ति पर भेड़-बकरी, मुर्गे चढ़ाना बन्द कर दिया और वे सब बहू को दी जाने लगीं। सास को यह सब देख और भी ईर्ष्या होने लगी।

कइयों ने कोशिश की, पर कोई फल न निकला। बहू ने राजा के पास जाकर कहा कि वह मूर्ति की नाक पर से अँगुली हटा देगी। राजा मान गया।

बहू सास का कलसा लेकर मन्दिर में गयी। उसने अन्दर से दरवाज़ा बन्द कर लिया। कलसा उठाकर उसने मूर्ति के पास जाकर कहा- "पति की छाया में पत्नी होती है और सास के नीचे बहू। क्या तू ने स्त्री-जन्म नहीं लिया है? एक को देखकर नाक पर अँगुली धरने की तुझे क्या बीमारी हुई है? अँगुली उतारती है कि नहीं? या कलसा तेरे सिर पर मारूँ?"

एक बार उसने लड़के को बुलाकर कान में कहा-"तेरी पत्नी बड़ी भारी शक्ति है। उसके साथ भला तू क्या गृहस्थी चलायेगा? अगर उसे गुस्सा आया तो तुझे, मुझे सबको मिलाकर निगल जायेगी।"

"अभी तक मैं तुझ से ही डरता आया था। अब इसको देखकर भी डर लगता है।" लड़के ने कहा।

"इसीलिये, आओ! हम चालाकी से उसका काम तमाम कर दें। फिर एक अच्छी अक्लमन्द लड़की को खोजकर तेरा विवाह करवा दूँगी।" माँ ने कहा।

"तेरी मर्ज़ी। जो तू कहेगी, वही मैं कर दूँगा।" लड़के ने कहा।

एक दिन रात को जब बहू सो रही थी, माँ और लड़के ने उसके हाथ-पैर बाँध दिये। उसके मुँह में एक बर्तन ठूँस दिया, फिर उसको एक चटाई में लपेटकर श्मशान ले गये।

लड़के ने, जो लकड़ी वगैरह श्मशान के आसपास मिली, उनसे एक चिता तैयार कर दी। परन्तु कहीं आग न थी।

"तू घर जाकर आग ले आ।" माँ ने कहा।

"मुझे अकेले जाने में डर लगता है।" लड़के ने कहा।

"अच्छा, तो मैं जाकर ले आती हूँ। तू यहीं रह।" माँ ने कहा।

"मैं यहाँ अकेला नहीं रह सकता, मुझे डर लग रहा है।"

और करते ही क्या? दोनों मिलकर घर गये। इस बीच में बहू ने जैसे-तैसे हाथ के बन्धन खोल लिये। चटाई से बाहर निकल आयी। पैरों के बन्धन भी खोल लिये। उसने चटाई में ख़जूर का एक ठूँठ रखकर, उसे फिर चिता



पर रख दिया और स्वयं एक पेड़ पर चढ़ गई।

कुछ देर बाद माँ और लड़का आग लेकर आये। चिता को आग दिखाई, और वह जब खूब जलने लगी तो घर वापस चले गये। फिर थोड़ी देर बाद, दो चोर कहीं से चोरी कर, उस पेड़ के नीचे, जिस पर बहू बैठी थी, बैठकर बँटवारा करने लगे। बहू ऊँघती ऊँचती उन पर जा गिरी।

"अरे अरे राक्षसी।" चिल्लाते हुए चोर वहाँ से सिर पर पैर रख भाग गये। उनके छोड़े हुए गहनों को बहू ने ले लिया। साड़ियों में से एक अच्छी-सी साड़ी निकाल कर उसने पहन ली, और अपनी साड़ी चिता में फेंक दी। चोरी का माल लेकर, वह सवेरा होते होते अपने घर पहुँची। दरवाज़ा खटखटाया। दरवाज़ा खोलकर, ज्यों ही सास ने उसको देखा तो उसके मुख से चीख निकली, और मूर्छित हो नीचे गिर गयी।

बहू ने उसकी सेवा-शुश्रूषा की। उसको होश आया। तब बहू ने कहा-"डरिये मत, सासजी! मैं भूत नहीं हूँ। आप के जलाने के बाद मुझे यमदूत ले गये थे। यम मुझे देखकर दूतों पर गुस्सा करने लगा।" सास को लाने के लिए कहा था और तुम बहू को क्यों ले आये हो?" उसने पूछा। तब मैंने यम धर्मराज से अनुनय-विनय की-'हमारी सास अब से ठीक तरह रहेगी। उनको अभी न बुलवाइए।' यम आख़िर मेरी बात मान गया। तब यम दूत, ये गहने और कपड़े देकर, मुझे घर छोड़ गये। यही बात है।"

तब से सास को यह डर बना रहता कि उसने बहू को कुछ कहा कि नहीं कि यम के दूत उसे उठा ले गये। वह बहू को बहुत अच्छी तरह देखने लगी।





मालव देश का धर्मपाल राजा था। उसकी राजधानी कौशाम्बी थी। उसके दो अनुभवी मन्त्री थे। एक का नाम विजयकेतु था, और दूसरे का नाम विहारभद्र।

पट्टाभिषेक के बाद, धर्मपाल ने दोनों मन्त्रियों को अपने कमरे में अलग अलग बुलाकर पूछा-"मुझे कैसी नीति का पालन करना चाहिये?"

इस प्रश्न का उत्तर विजयकेतु ने यों दिया :

"राजा! सबसे अधिक अच्छी नीति है-दण्ड की नीति। जिस प्रकार अग्नि में तपाने से सोना और चमकने लगता है, हथौड़े मारने से जिस तरह लोहा और पक्का हो जाता है, उसी तरह दण्ड की नीति से शासन भी और उत्तम हो जाता है। प्रजा की हानि तो होती ही नहीं, बल्कि उसका फ़ायदा होता है।

और विहारभद्र ने उसी प्रश्न का इस प्रकार उत्तर दिया:

"राजन् ! शासन-कार्य बहुत कठिन है। आदर्श राजा को कभी कभी नींद और भोजन से भी हाथ धो बैठना पड़ता है। इसलिये बुद्धिमान राजा को, शासन-कार्य अनुभवी मन्त्रियों को सौंपकर सुख-विलास में अपना समय व्यतीत करना चाहिये।" राजा ने चकित होकर पूछा-"फिर राजनीति के बारे में क्या कहते हो?"

"राजन्! नीति पुस्तकों में भरी पड़ी है। अपने सुख के लिये, पराशर, व्यास जैसे बड़े बड़े ऋषियों ने भी नीति का उल्लंघन किया है। हमारी तो बिसात ही क्या है? आप अभी नौजवान है। यह जवानी, ये राज-भोग क्या शाश्वत हैं? जब तक आप इनका उपयोग कर सकते हैं, तब तक

श्री विनोद कुमार गर्ग



भर सक उपयोग कीजिये।" विहारभद्र ने कहा। "दण्डनीति के बारे में तुम्हारी क्या राय है?" राजा ने पूछा।

विष्णुगुप्त द्वारा संग्रहीत दण्डनीति में छः हज़ार श्लोक हैं। अगर उनको कण्ठस्थ भी कर लिया जाय तो उसको समझने के लिये शब्द-शास्त्र पढ़ना होगा। फिर उनके कई अर्थ हैं। एक अर्थ दूसरे अर्थ से मिलता भी नहीं है। इसलिए हमें दुनियाँ की चलन देखकर अपनी नीति बनानी चाहिये, न कि पुस्तकों के श्लोकों को रटकर।" विहारभद्र ने कहा।

धर्मपाल को यह सलाह उचित-सी मालूम हुई। उसने राज्य कार्य विहारभद्र को सौंप दिया और स्वयं जुआ, मद्य-पान, आदि व्यसनों में समय बिताने लगा। विजयकेतु को वह कभी न बुलाता, उसकी सलाह भी न लेता।

ऐसा लगता था, जैसे विहारभद्र ही राज कर रहा हो। वह राजा को कुछ न बताता। खुद सारा राज्य- कार्य देखता। अगर किसी के साथ कभी अन्याय होता, वह किसी से शिकायत भी नहीं कर सकता था और जिन पर विहारभद्र की कृपा-दृष्टि थी, वे मनमानी करने लगे।

देखते देखते दरबार में गड़बड़ी पैदा हो गई। प्रजा में भी जुआ, शराब पीने की आदतें बढ़ने लगीं। इनके साथ चोरी वगैरह भी अधिक होने लगी। परन्तु जब पियक्कड और जुआखोर पकड़े जाते तो अक्सर उनको सज़ा भी न मिलती थी। क्योंकि सज़ा देनेवाले खुद शराबी थे।

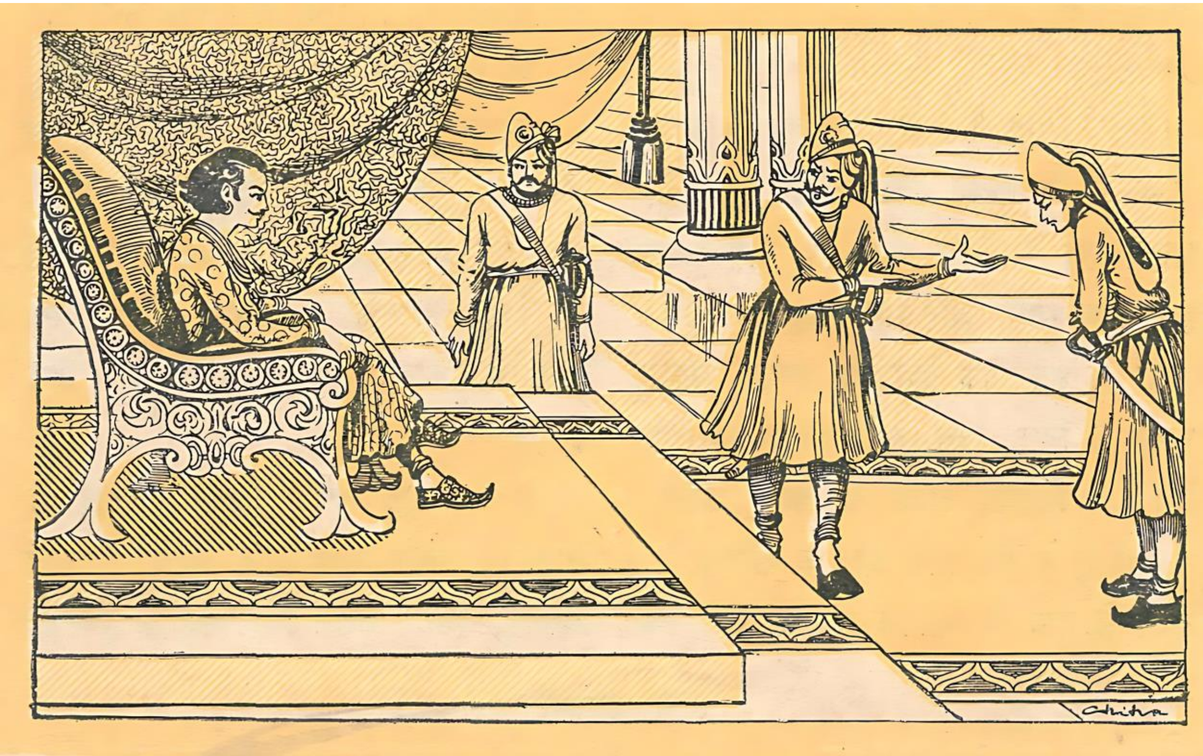
कौशाम्बी नगर की अराजकता के बारे में चोल देश तक ख़बर पहुँची। साधारण परिस्थितियों में चोल राजा मालव देश पर विजय नहीं पा सकता था। परन्तु अब

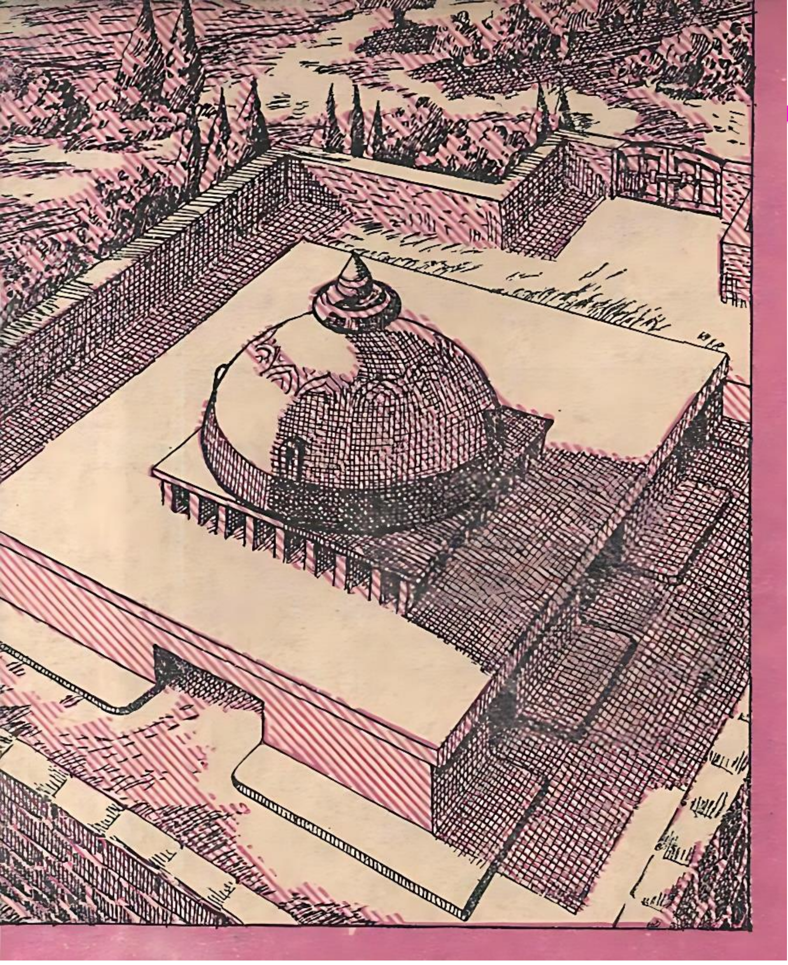
परिस्थितियाँ बदल गयी थीं। इसलिये उसने अपने मन्त्री के लड़के विनीति को कौशाम्बी भेजा। उसने धीमे धीमे दरबार के बारे में सब बातें मालूम कर लीं। वह विहारभद्र का विश्वासपात्र भी बन गया। दोनों ने मिलकर षड्यन्त्र रचा।

एक बार विहारभद्र ने विनीति के राजा से यों परिचय कराया- "महाराज! यह चोल देश के मन्त्री का लड़का है। उसका चोल राजा ने अपमान किया, और यह बदला लेने के लिए आपका आश्रय चाहता है। राजनीति के अनुसार चूँकि शत्रु का शत्रु मित्र होता है, यह भी हमारा मित्र है। इसलिए हमें इसको आश्रय देना चाहिये।"

राजा ने मन्त्री का सुझाव स्वीकार कर लिया। विजयकेतु को यह न भाया। उसने राजा के पास जाकर कहा- "बिना पूछतलब किये, विनीति को आश्रय देना ठीक नहीं है। चोल राजा हमारे देश पर बहुत दिनों से नज़र लगाये बैठा है। अगर विनीति ने हमारे भेद वहाँ पहुँचा दिये, तो हमारी हार निश्चित है।"

"अरे, तुम पागल तो नहीं हो गये हो? घबराओ मत। हम ही विनीति से





चोल देश के भेद मालूम कर लेंगे।" राजा ने कहा।

देखते देखते विनीति, धर्मपाल के दरबार में एक प्रभावशाली व्यक्ति बन गया।

उसके नौकर-चाकर रोज बदलते जाते थे। चोल देश से रोज़ कोई न कोई आता, कुछ दिन रहता और ग़ायब हो जाता।

"ये सब चोल देश को हमारे आधीन करने के लिए अपने प्राणों की कुर्बानी कर देंगे।" विनीति राजा से कहा करता।

परन्तु वे सब चोल देश के सैनिक थे। उनमें से एक भी वापिस न गया। उनको एक जगह रखने के लिये विनीति ने राज्य के खर्च पर एक बहुत बड़ा मकान बनवाया। उसके चारों तरफ़ ऊँची चहरदिवारी भी बनवायी। उसमें सब तरह के शस्त्र इकट्ठे किये गये। उनका पालन-पोषण राजा के खर्च पर ही होता। थोड़े दिनों में इन सैनिकों की संख्या पाँच हज़ार हो गयी।

यह सब, विजयकेतु अपने निजी गुप्तचरों द्वारा मालूम करता जाता था। विनीति के खर्च के आधार पर, उसने उसके सैनिकों की संख्या का भी अनुमान कर लिया था। राजा से कहता तो कोई फ़ायदा न होता, इसलिए उसने रानी को जाकर इस षड़यन्त्र की सूचना दी। रानी ने इसकी ख़बर पति को पहुँचा दी।

धर्मपाल ने कभी भी विहारभद्र का पूरी तरह विश्वास न किया था। परन्तु, अपने को नौजवान, बेतजुर्बेकार दिखाकर वह यह परखना चाहता था कि कौन-सा मन्त्री उसका अधिक हित चाहता था।

अगले दिन धर्मपाल जब दरबार में आया तो उसके व्यवहार में बहुत परिवर्तन दिखाई दिया। उसने विहारभद्र के बुलाकर

कहा-"अभी तक सारा राज्य कार्य तुम्हीं देखते आये हो, आज मैं देखूँगा।"

विहारभद्र ने इधर उधर की बातें कर राजा का निश्चय बदलना चाहा। पर कोई फ़ायदा न हुआ।

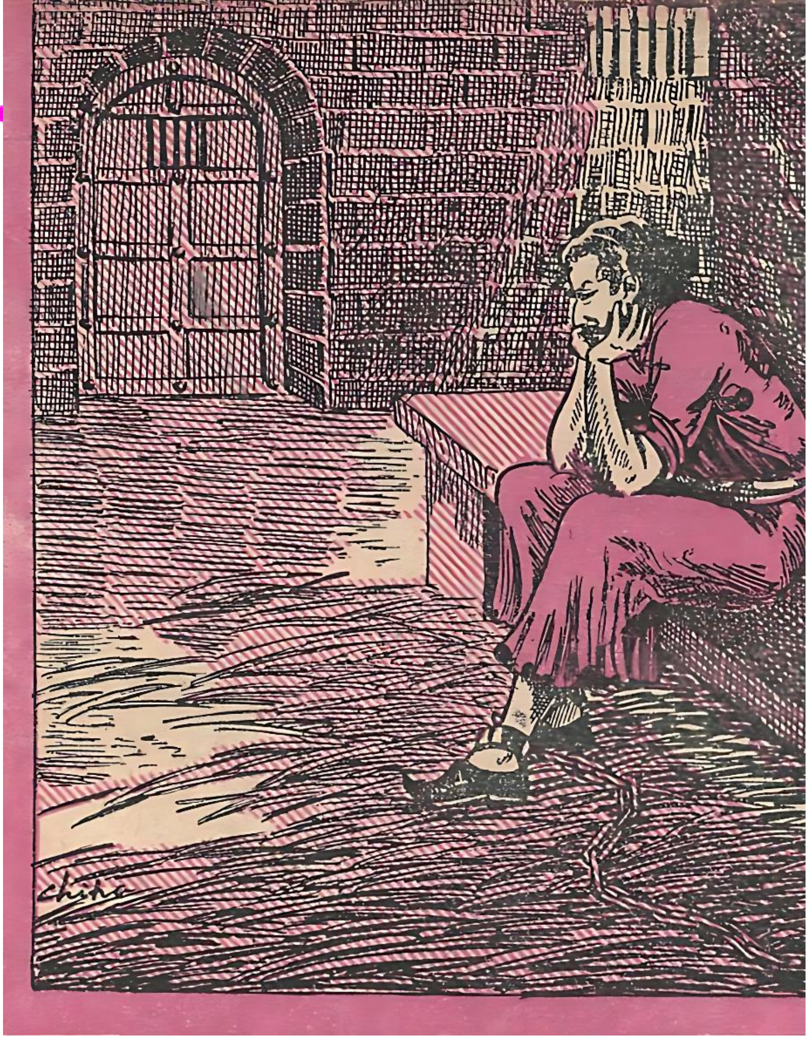
"मन्त्री, अगर शत्रु हम पर हमला कर दें तो क्या हम उनका मुक़ाबला कर सकेंगे? तुम्हारी क्या राय है?" राजा ने विहारभद्र से पूछा।

"महाराज, फ़िलहाल हमें युद्ध का कोई भय नहीं है।" विहारभद्र ने कहा।

"क्या तुम यह नहीं जानते कि चोल देश का राजा अपनी पाँचों सेनाओं के साथ हम पर धावा बोलने जा रहा है?" राजा ने पूछा।

विहारभद्र हक्का-बक्का रह गया- "पाँचवीं सेना कौन-सी है महाराज?" मन्त्री ने पूछा। उन दिनों चार सेनायें होती थीं- रथ, हाथी, अश्व, और पदाति।

"चार सेनाओं के साथ चोल देश का राजा हम पर आक्रमण करेगा और पाँचवीं सेना, हमारा नमक खाती हुई हमारे देश में ही है। अगर इतना भी नहीं मालूम है तो तुम्हें मंत्री पद पर रखना ख़तरनाक है।" राजा ने कहा। उसको मन्त्री पद पर से हटाकर



क़ैद कर दिया। उसकी जगह विजयकेतु नियुक्त किया गया।

तुरन्त राजा, और मन्त्री मिलकर उस मकान के पास गये, जो विनीति ने अपने सैनिकों के लिए बनवाया था। जब राजा ने पूछताछ की कि वह मकान किसका था, तो वहाँ के लोगों ने बताया कि विनीति उसका मालिक था।

राजा ने विनीति को बुलवाकर पूछा- "क्या यह मकान तेरा है? इसमें क्या है?"

आप ही के लिये यह महल मन्त्री ने बनवाने के लिये कहा था। मैं स्वयं इसकी

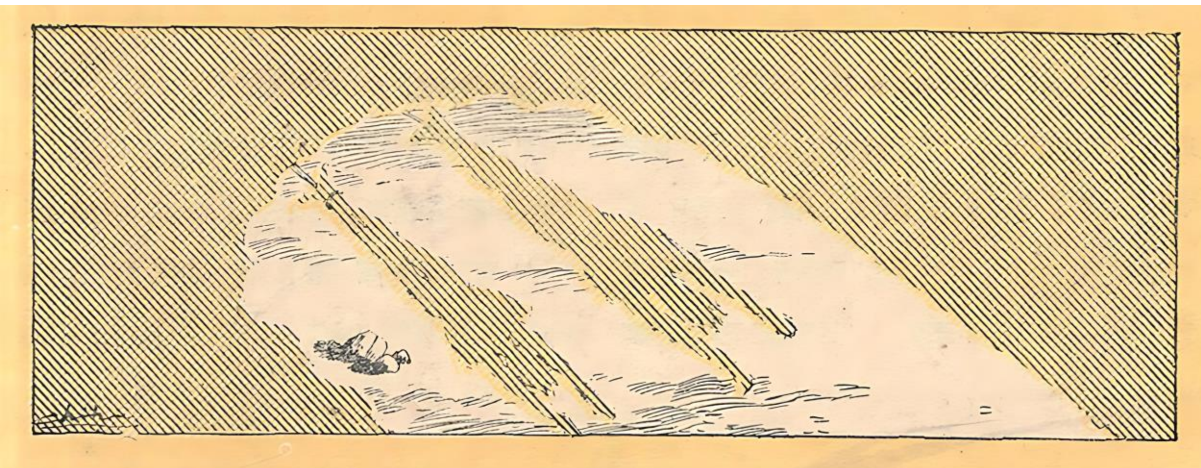
देखभाल कर रहा था। यह मकान मेरा नहीं है। इसमें क्या है, यह भी मुझे नहीं मालूम।" विनीति ने कहा।

मुझे अभी इस मकान की ज़रूरत नहीं है। इसलिए इसकी खिड़की, दरवाज़ों को ईंट-पत्थर लगाकर बन्द करवा दो। इस मकान में क्या है, मैं बाद में देख लूँगा। तब तक विनीति को क़ैद में बन्द कर दो।" राजा ने कहा।

एक ही दिन में वह मकान पाँच हज़ार सैनिकों का मकबरा हो गया। वे ज़िन्दे दबा दिये गये। विनीति क़ैद में था। परन्तु पहले भेजी हुई ख़बर के अनुसार चोल देश का राजा, कौशाम्बी पर आक्रमण करने के लिए आ गया था।

विजयकेतु तो इस आक्रमण की आशा कर ही रहा था। उसने चोल राजा की सेनाओं को किले तक आने दिया, फिर अपने सैनिकों को भेजकर उनको घेर लिया। किले पर खड़े हुए सैनिक और पीछे से घेरे हुए सैनिकों के बीच, चोल राजा की सेना फँस गयी। बुरी तरह मार-पीट हुई। निश्चित समय पर पाँचवीं सेना किले के अन्दर से क्यों न आई थी, इसका अनुमान भी चोल राजा न कर सका। वह हार गया और जैसे-तैसे जान बचाकर अपने देश भाग गया।

धर्मपाल ने विहारभद्र और विनीति पर मुकदमा चलाया और उन्हें प्राण-दण्ड दिया। उनके शवों को किले के दीवार से लटका दिया गया और शवों के नीचे मोटे-मोटे अक्षरों में लिख दिया गया-"पाँचवी सेना के नायकों को यही दण्ड मिलता है।" उसके बाद राजा धर्मपाल मन्त्री विजयकेतु के साथ कौशाम्बी का अच्छा पालन करता रहा।





एक गाँव में एक धनी किसान रहा करता था। उसके चार लड़के थे। चारों बड़े अनाड़ी थे। उम्र काफ़ी बड़ी हो गई थी; फिर भी वे बच्चों की तरह बेफ़िक्र रहते। उनमें जिम्मेवारी की भावना नहीं पैदा हुई थी। वे कोई काम-धन्धा भी न जानते थे।

यह देख पिता ने उनको अपने पैरों पर खड़ा होना सिखाकर जिम्मेवार बनाना चाहा। एक दिन उसने बड़े लड़के को बुलाकर कहा-"तुम अपने मामा के गाँव जाकर उन लोगों का हाल-चाल मालूम करके आओ।"

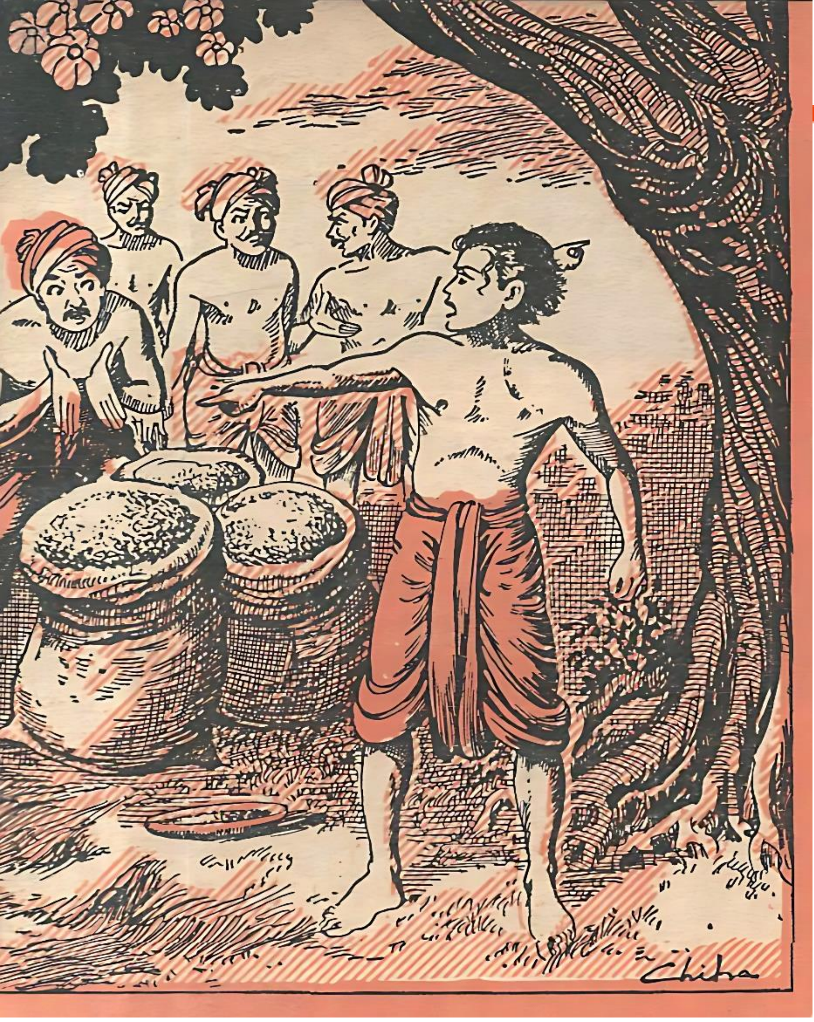
जब अगले दिन सवेरे वह जाने को था, तो उसकी माँ ने आकर कहा बेटा, वह गाँव बड़ा वाहियात है। न वहाँ आग मिलती है, न पानी ही मयस्सर होता है। वहाँ ज़्यादा दिन न रहना। जल्दी चले आना। अगर तुम्हारा मामा चार दिन ठहरने के लिए कहे तो कहना कि ज़रूरी काम है और वापिस आ जाना।"

बड़े लड़के ने दो हँड़ियाँ कहीं से लीं, उनमें से एक में थोड़ी-सी आग, और दूसरे में पानी रख मामा के घर चल दिया। थोड़ी दूर जाने के बाद उसे दो हँड़ियों का ढोना भारी लगने लगा। उसने आगवाली हँडिया में पानी उड़ेल दिया और पानी वाली हँडिया को दूर फेंक दिया। वह आराम से जल्दी जल्दी चलने लगा। वह मामा के गाँव में पहुँचा।

उसको देखते ही मामा ने पूछा-"उस हँड़िया में क्या है?"

"सुना है, तुम्हारे गाँव में न आग मिलती है, न पानी ही। इसलिये दोनों को साथ ही ले आया हूँ।" उसने जवाब दिया।

कुमारी विद्यावती राम



"वाह, क्या दिमाग़ है तेरा? देखें, कहाँ है आग?" उन्होंनें पूछा।

"पानी में है।" उसने उत्तर दिया।

उसकी बेवकूफ़ी पर उसके मामाओं को हँसी आयी। उसको वापिस भेजते समय उन्होंने सलाह दी-"बेटा! यह दुनियाँ बहुत ही ख़राब है। तू कभी अकेला घर छोड़कर न जाना।"

उसने घर जाकर जो कुछ गुज़रा था, पिता को कह सुनाया। पिता ने सोचा कि शायद वह कभी न सुधरेगा। उसकी आशा जाती रही। दूसरे लड़के को बुलाकर उसने कहा-"बेटा! तुम इस साल खेत में ही झोंपड़ा डालकर रहो और खेतीबारी करवाओ।"

"अच्छा, पिताजी!" दूसरा लड़का खेत में रह कर खेतीबाड़ी का काम देखने लगा। खेत में तिल पैदा होते थे। वह तिल बोने का समय था। इसलिए काश्तकारों ने बोने के लिए तिल तैयार कर रखे थे।

किसान का लड़का मुट्ठी भर तिल लेकर चबाने लगा। यह देख एक काश्तकार ने उससे कहा-"अरे भाई! कच्चे तिल क्यों खाते हो? अगर चाहिये तो मैं भुनवाये देता हूँ।" उसने अपनी पत्नी से सेर भर तिल भुनवाकर किसान के लड़के को दे दिये। उसे तिल बड़े स्वादिष्ट लगे, उसने किसानों को बुलाकर हुक्म दिया-"पहले इन बोरियों में भरे तिलों को भूनो।"

"फिर बीज कहाँ से मिलेगा?" किसानों ने हैरान होकर पूछा।

"मैं बताऊँगा न।" किसान के लड़के ने इस तरह कहा, जैसे वह सब कुछ जानता-बूझता हो।

ख़ैर, किसानों ने उसके हुक्म के अनुसार सारे तिल भून डाले।

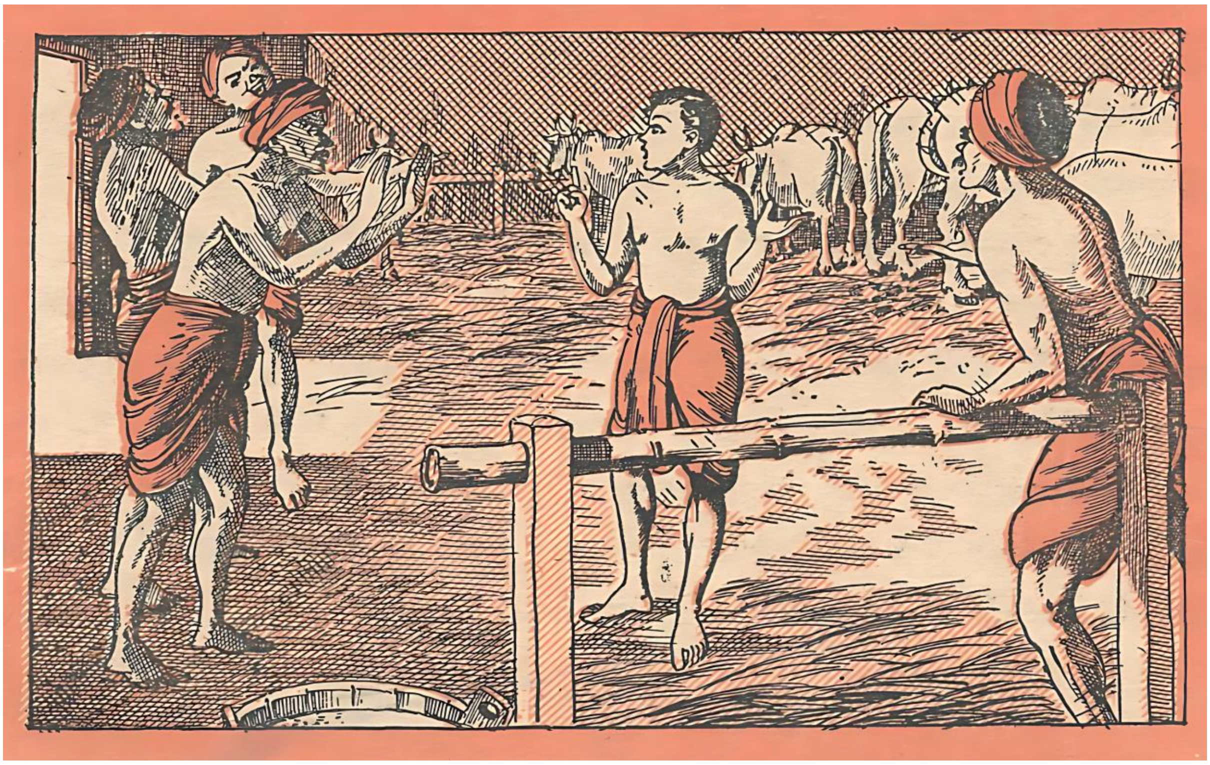
"अब इन्हें खेत में बोओ। बड़े अच्छे तिल पैदा होंगे। इतने दिनों से तुम खेती कर रहे हो। कच्चे तिलों को बोकर कच्चे तिल पैदा करने के सिवाय तुमने कुछ न सीखा।" किसान के दूसरे लड़के ने कहा।

वे भागे भागे किसान के पास गये, और उसको उसके लड़के की करतूत सुना दी। किसान ने निराश हो, अपने दूसरे लड़के को वापिस बुला लिया।

किसान ने गाँव के एक कोने में, गाय, भैंस, बैल आदि के लिये, जगह बना रखी थी। उनकी देखभाल करने के लिए किसान ने तीसरे लड़के को भेजा।

थोड़े दिन वहाँ रहने के बाद, तीसरे लड़के को एक तरकीब सूझी। उसने तुरन्त चरवाहों को बुलाकर इस प्रकार कहा-"अरे भाई! एक महीने बाद दीवाली आनेवाली है। तुम इस महीने भर गौ का दूध न निकालना। दिवाली के दिन सारा का सारा दूध निकाल लेंगे और ऊँचे दाम पर बेचेंगे।"

यह सुन कुछ नौकर हँसे। मगर कइयों ने कहा-"ऐसा नहीं हो सकता।"





परन्तु किसान के लड़के को गुस्सा आया। उसने कहा-"जैसा मैं कहता हूँ, वैसा करो।"

नौकरों का क्या जाता था? उन्होंने दूध निकालना बन्द कर दिया। दीवाली के आते आते गौ ने दूध देना बन्द कर दिया। नौकरों ने जाकर यह बात मालिक से कही। इसने तीसरे लड़के को भी घर बुला लिया।

अब किसान अपनी सारी आशाएँ चौथे लड़के पर लगाये बैठा था। वह सचमुच अपने तीन भाइयों से कुछ अधिक अक्लमन्द दिखाई देता था। उनकी बेअक्ली की अक्सर हँसी भी उड़ाया करता था।

पिता ने, जैसे और लड़कों से कहा था, वैसे चौथे लड़के से नहीं कहा। उसने स्वयं उसे कोई काम न बताकर, पूछा-"बेटा, तुम क्या काम करना चाहते हो?"

"पिताजी! मैं व्यापार करना चाहता हूँ।" चौथे लड़के ने कहा।

"अच्छा! तो दो हज़ार रुपये ले जाओ और पैसा कमाओ।" पिता ने कहा।

दो हज़ार रुपया लेकर, लड़का शहर गया और वहाँ उसने दो हज़ार रुपये की चन्दन की लकड़ी खरीदी और उसको गाड़ी पर लदवाकर वह चल दिया।

गाड़ी लेकर, वह कई शहर, कस्बे घूमा परन्तु चन्दन की लकड़ी बिक न सकी। आखिर वह एक शहर में पहुँचा। उसने वहाँ लोगों से पूछा-"यहाँ कौन-सी चीज़ अच्छी बिकती है? किस चीज़ का अच्छा व्यापार है?"

"आजकल कोयले की जो माँग है, किसी और चीज़ की नहीं है।" लोगों ने बताया।

"वाह।" किसान के लड़के ने मन ही मन सोचा। उसने तुरन्त गाड़ी पर से चन्दन की लकड़ी उतरवायी, और उसका वहीं का वहीं कोयला बनाकर, दस रुपये में बेच दिया। फिर वह गाड़ी लेकर एक और शहर पहुँचा। उसने वहाँ लोगों से पूछा- "यहाँ क्या चीज़ सस्ती मिलती है?"

"सिवाय कपास के और कोई चीज़ नहीं है। यहाँ जहाँ कहीं भी जाओ, वही मिलती है।" किसान के लड़के ने कपास खरीदकर गाड़ी पर रखवायी और उसे बेचता बेचता वह एक शहर पहुँचा।

माल देखकर लोगों ने कहा-"खरीद तो लें, पर कपास साफ़ नहीं है।" उसे मालूम हो गया कि वह कपास कहीं बिक नहीं पायेगी ।

किसान के लड़के को कुछ न सूझा कि क्या करें। गाड़ी लेकर सड़क पर जाते जाते उसने आराम करना चाहा, और वह एक घर के वराण्डे में जाकर बैठ गया। वराण्डे में, एक तरफ़ एक सुनार, भट्टी में सोना डालकर, धौंकनी से फूँक मार रहा था। "सुनार जी! आप क्या कर रहे ?" किसान के चौथे लड़के ने पूछा। "सोने को आग में डालकर साफ़ कर रहा हूँ " सुनार ने कहा।

किसान के लड़के को यकायक बहुत जोश और उत्साह आ गया। वह तुरन्त अपनी जगह गया, गाड़ी में से कपास उतरवाया, और एक बड़ा अग्निकुण्ड बनाकर, कपास को साफ़ करने के लिए उसने सारा कपास उस में डलवा दिया।

इस तरह आख़िरी लड़के के व्यापार का भी अन्त हुआ। किसान को अपने लड़कों पर भरोसा न रहा। उसने अपनी आशाओं को छोड़ दिया।





वत्स देश की राजधानी अमरावती थी। नरवाहन दत्त उसका राजा था। वहाँ वसुधर नाम का एक गरीब मज़दूर रहा करता था। वह बोझ ढोकर रोज़ी किया करता था।

जब यह गरीब मज़दूर राजमहल की ड्योढ़ी के पास से जा रहा था तो उसको हीरों से जड़ा हुआ एक कङ्कण मिला। वसुधर उसे घर ले गया। उसमें से एक हीरा निकालकर वह जौहरी के पास गया।

हिरण्यगुप्त ने रत्न की जाँचकर कहा-"हीरा तो बहुत अच्छा मालूम होता है। अगर तुम बेचना चाहो तो लाख दीनार देने के लिए तैयार हूँ। कहो, बेचते हो?"

"मैं भला इतना रुपया कहाँ रखूँगा? आप अपने पास ही रखिए, जब कभी ज़रूरत होगी तो मैं आकर ले जाऊँगा।" वसुधर ने कहा।

बाद में वह पाँच बार जौहरी के पास गया और हर बार एक एक हज़ार दीनार ले गया। वह पैसेवाला हो गया था, इसलिए बह खूब अच्छा खाने-पीने लगा। मज़ा उड़ाने लगा। उसने अच्छे कपड़े भी खरीद लिये।

अमरावती नगर में ही रत्नदत्त नाम का एक हीरों का व्यापारी रहा करता था। उसने वसुधर से कई बार बोझ उठवाया था। वसुधर को आता-जाता न देख, उसके बारे में उसने और मज़दूरों से पूछा। उन लोगों ने बताया-"अब वह क्यों काम पर आयेगा? वह अब बड़ा आदमी है, मालामाल हो गया है। "

रत्नदत्त ने यह जानना चाहा कि वसुधर के पास यकायक इतना पैसा कहाँ से आ गया है। उसने उसको मना-मनूकर

श्री उमाकान्त वर्मा

बुलवाया और उससे कहा-"अरे, सुना है, अब तुम मालामाल हो गये हो। हमारे घर भी एक दिन खाना खाने आना। हम दोनों पुराने दोस्त जो हैं।"

वसुधर मान गया। रत्नदत्त ने उसे खूब शराब पिलायी, खुशामद की और जब वह नशे में था, तो उससे सब मालूम कर लिया। रत्नदत्त ने उसको घर भेज दिया। वह स्वयं राजा के पास भागा भागा गया, और उसको सब बता दिया।

"महाप्रभू! उतना कीमती कङ्कण आपका ही हो सकता है। आपको तहकीकात करवानी चाहिये।"

यह सुनते ही नरवाहन दत्त को कङ्कण के बारे में याद आया। कुछ दिन पहले जब शहर का निरीक्षण करके लौट रहा था, तो उसको उसका कङ्कण नहीं दिखाई दिया। उसने उसको ढूँढ़ निकालने का हुक्म दिया। फिर वह उसके बारे में भूल गया।

नरवाहन दत्त ने वसुधर को कङ्कण लेकर महल में बुलवाया। कङ्कण राजा का था। उस पर राजा का नाम था।



"इस पर हमारा नाम देखकर भी तुमने कैसे यह कङ्कण अपना मान लिया?" राजा ने वसुधर को डाँटते-डपटते पूछा। "मैं मज़दूर हूँ। बोझ ढोकर ज़िन्दगी बसर करता हूँ। मैं कैसे जान सकता हूँकि उस पर क्या लिखा है?" वसुधर ने जवाब दिया। "ख़ैर, पाँच-दस आदमियों से पूछ जो लेते?" राजा ने पूछा। "मुझ जैसे गरीब के पास इतना कीमती कङ्कण देखकर लोग पहले मुझे चोर कहते, और बाद में बात करते।" वसुधर ने निवेदन किया।

बूढ़ा मन्त्री यौगन्धराय, यह सब सुन रहा था। उसने कहा-"यह निरपराध

है। उसे जाने दीजिये। हिरण्यगुप्त को हीरे के साथ हाज़िर होने के लिए कहिये।" थोड़ी देर में हिरण्यगुप्त हीरे के साथ हाज़िर किया गया। क्यों, तुमने कङ्कण पर हमारा नाम देखकर भी इसके हीरे खरीदे हैं? तुम्हें सज़ा दी जानी चाहिए न?" नरवाहन दत्त ने आँखें दिखाते हुए पूछा। "प्रभू! मैंने यह कङ्कण कभी नहीं देखा है। मेरे पास वसुधर केवल हीरा ही लाया था। मैंने उसको कोई धोखा नहीं दिया है। मैंने अच्छी कीमत पर ही उसे खरीदा है। उसने मुझसे सिर्फ पाँच हज़ार दीनार ही ली हैं। बाकी रुपया मेरे पास ही है।" हिरण्यगुप्त ने कहा।

"उस ग़रीब के पास इतना कीमती गहना कैसे आया, इसका तुम्हें सन्देह नहीं हुआ? शायद उसने चोरी की हो, यह भी तुम ने नहीं सोचा?"

"प्रभू! मेरा काम व्यापार करना है, चोरों को पकड़ना नहीं। अगर हम अपना काम अच्छी तरह न करें, तो आप ज़रूर हमें सज़ा दे सकते है।" हिरण्यगुप्त ने कहा।

"यह भी निरपराध है। इसे पाँच हज़ार दीनार वापिस देकर, इसको भेज दीजिए। रत्नदत्त को एक बार बुलवाइये।" यौगन्धराय ने सलाह दी।

रत्नदत्त ने सोचा कि शायद राजा इनाम देगा। वह खुशी खुशी राजमहल में गया। परन्तु उसको देखते ही यौगन्धराय ने कहा-"हमें तुम्हारा व्यवहार बिल्कुल पसन्द नहीं है। तुमने वसुधर को विश्वास दिलाकर धोखा दिया है। तुमको ऐसा नहीं करना चाहिए था। चूँकि यह तुम्हारा पहला अपराध है, इसलिए हम माफ करते हैं।" रत्नदत्त शर्मिन्दा हुआ।





रंगीन चित्र-कथा चित्र – ३